ISSN: Under Process| Vol. 1, Issue. 1| September 2021|Frequency: Biannual

अभिनवधारा
ABHINAVDHARA
International Journal of Innovation in Indic Studies
www.ijiis-org.com

श्रीमद्भगवद्गीतायां कर्मयोगस्य जीवनदर्शनम्

Vibhakar Kumar Dikshit
Research Scholar
University of Delhi

Received: 12/08/2021 | Accepted: 14/08/2021 | Published: 7/09/2021

भूमिका

वास्तव में कर्मयोग ही वह योग है जिसके माध्यम से हम अपनी जीवात्मा से जुड़ पाते हैं। कर्मयोग हमारे आत्मज्ञान को जागृत करता है।**कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्**[1]**,** इसके बाद हम न केवल अपने वर्तमान जीवन के उद्देश्यों को बल्कि जीवन के बाद की अपनी गति का पूर्वाभास प्राप्त कर सकते हैं। इस योग में कर्म के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति की जाती है।यथा शङ्करभाष्य मे मिलता है "**अभ्युदयार्थः अपि यः प्रवृत्तिलक्षणः धर्मः वर्णाश्रमान् च उद्दिश्य विहितः सः देवादिस्थानप्राप्तनिमित्तोपि सन् ईश्वरार्पणबुद्ध्या अनुष्ठीयमानः सत्वशुद्धये भवति फलाभिसन्धिवर्जितः"।**[2] श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। गृहस्थ और कर्मठ व्यक्ति के लिए यह योग अधिक उपयुक्त है। हममें से प्रत्येक किसी न किसी कार्य में लगा हुआ है, पर हममें से अधिकांश अपनी शक्तियों का अधिकतर भाग व्यर्थ खो देते हैं; क्योंकि हम कर्म के रहस्य को नहीं जानते।

[1]

[2] गीताभाष्य

मूल विषय

जीवन के लिए, समाज के लिए, देश के लिए, विश्व के लिए कर्म करना आवश्यक है। किन्तु यह भी एक सत्य है कि दु:ख की उत्पत्ति कर्म से ही होती है। सारे दु:ख और कष्ट आसक्ति से उत्पन्न हुआ करते हैं। कोई व्यक्ति कर्म करना चाहता है, वह किसी मनुष्य की भलाई करना चाहता है और इस बात की भी प्रबल सम्भावना है कि उपकृत मनुष्य कृतघ्न निकलेगा और भलाई करने वाले के विरुद्ध कार्य करेगा। इस प्रकार सुकृत्य भी दु:ख देता है। फल यह होता है कि इस प्रकार की घटना मनुष्य को कर्म से दूर भगाती है। यह दु:ख या कष्ट का भय कर्म और शक्ति का बड़ा भाग नष्ट कर देता है। कर्मयोग सिखाता है कि कर्म के लिए कर्म करो, आसक्तिरहित होकर कर्म करो। इसी अर्थ को मानकर भगवान् कृष्ण अर्जुन को कहते है "**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**"[3] कर्मयोगी इसीलिए कर्म करता है कि कर्म करना उसे अच्छा लगता है और इसके परे उसका कोई हेतु नहीं है। कर्मयोगी कर्म का त्याग नहीं करता वह केवल कर्मफल का त्याग करता है और कर्मजनित दु:खों से मुक्त हो जाता है। जैसे कि कहा गया है–"**त्यक्त्वा कर्म फलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः"** उसकी स्थिति इस संसार में एक दाता के समान है और वह कुछ पाने की कभी चिन्ता नहीं करता। वह जानता है कि वह दे रहा है और बदले में कुछ माँगता नहीं और इसीलिए वह दु:ख के चंगुल में नहीं पड़ता। वह जानता है कि दु:ख का बन्धन 'आसक्ति' की प्रतिक्रिया का ही फल हुआ करता है।

गीता में कहा गया है कि मन का समत्व भाव ही योग "**सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते"।** जिसमें मनुष्य सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय, संयोग-वियोग को समान भाव से चित्त में ग्रहण करता है- **"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ" इति।** कर्म-फल का त्याग कर धर्मनिरपेक्ष कार्य का सम्पादन भी पूजा के समान हो जाता है। संसार का कोई कार्य ब्रह्म से अलग नहीं है। इसलिए कार्य की प्रकृति कोई भी हो निष्काम कर्म सदा ईश्वर को ही समर्पित हो जाता है। पुनर्जन्म का कारण वासनाओं या अतृप्त कामनाओं का संचय है। कर्मयोगी कर्मफल के चक्कर में ही नहीं पड़ता, अत: वासनाओं का संचय भी नहीं होता। इस प्रकार कर्मयोगी पुनर्जन्म के बन्धन से भी मुक्त हो जाता है। गीता का कर्मयोग जीवन में संपादित करें कर्मयोग का प्रतिपादन गीता में विशद् से हुआ है।

3

भारतीय दर्शन में कर्म, बंधन का कारण माना गया है। किंतु कर्मयोग में कर्म के उस स्वरूप का निरूपण किया गया है जो बंधन का कारण नहीं होता। योग का अर्थ है समत्व की प्राप्ति **(समत्वं योग उच्यते)**। सिद्धि और असिद्धि, सफलता और विफलता में सम भाव रखना समत्व कहलाता है। योग का एक अन्य अर्थ भी है। वह है कर्मों का कुशलता से संपादन करना **(योग: कर्मसु कौशलम्)**। इसका अर्थ है, इस प्रकार कर्म करना कि वह बंधन न उत्पन्न कर सके। अब प्रश्न यह है कि कौन से कर्म बंधन उत्पन्न करते हैं और कौन से नहीं? गीता के अनुसार जो कर्म निष्काम भाव से ईश्वर के लिए जाते हैं वे बंधन नहीं उत्पन्न करते। वे मोक्षरूप परमपद की प्राप्ति में सहायक होते हैं। इस प्रकार कर्मफल तथा आसक्ति से रहित होकर ईश्वर के लिए कर्म करना वास्तविक रूप से कर्मयोग है **"त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः"** और इसका अनुसरण करने से मनुष्य को अभ्युदय तथा नि:श्रेयस की प्राप्ति होती है।

गीता के अनुसार कर्मों से संन्यास लेने अथवा उनका परित्याग करने की अपेक्षा कर्मयोग अधिक श्रेयस्कर है क्योंकि भगवान् भी कहते है- **"प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थमनो गतान्"** इत्यादि। कर्मों का केवल परित्याग कर देने से मनुष्य सिद्धि अथवा परमपद नहीं प्राप्त करता। मनुष्य एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रहता **"न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठ्यकर्मकत्"** इत्यादि। सभी अज्ञानी जीव प्रकृति से उत्पन्न सत्व, रज और तम, इन तीन गुणों से नियंत्रित होकर, परवश हुए, कर्मों में प्रवृत्त किए जाते हैं। मनुष्य यदि बाह्य दृष्टि से कर्म न भी करे और विषयों में लिप्त न हो तो भी वह उनका मन से चिंतन करता है। इस प्रकार का मनुष्य मूढ़ और मिथ्या आचरण करनेवाला कहा गया है।

कर्म करना मनुष्य के लिए अनिवार्य है। उसके बिना शरीर का निर्वाह भी संभव नहीं है। भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं कि तीनों लोकों में उनका कोई भी कर्तव्य नहीं है। उन्हें कोई भी अप्राप्त वस्तु प्राप्त करनी नहीं रहती। फिर भी वे कर्म में संलग्न रहते हैं। यदि वे कर्म न करें तो मनुष्य भी उनके चलाए हुए मार्ग का अनुसरण करने से निष्क्रिय हो जाएँगे। इसलिये जनकादि भी कर्म करते हुये देखे गये है **कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि।** इससे लोकस्थिति के लिए किए जानेवाले कर्मों का अभाव हो जाएगा जिसके फलस्वरूप सारी प्रजा नष्ट हो जाएगी। इसलिए आत्मज्ञानी मनुष्य को भी, जो प्रकृति के बंधन से मुक्त हो चुका है, सदा कर्म करते रहना चाहिए। अज्ञानी मनुष्य जिस प्रकार फलप्राप्ति की आकांक्षा से कर्म करता है उसी प्रकार आत्मज्ञानी को लोकसंग्रह के लिए आसक्तिरहित होकर कर्म करना

चाहिए। इस प्रकार आत्मज्ञान से संपन्न व्यक्ति ही, गीता के अनुसार, वास्तविक रूप से कर्मयोगी हो सकता है।

स्वामी विवेकानंद का कर्म योग जीवन मे कैसे संपादित करें

स्वामी विवेकानंद की प्रसिद्ध किताब कर्म योग उनके द्वारा अमेरिका में दिसम्बर 1895 से जनवरी 1896 के बीच दिए गए व्याखानों का संकलन है। स्वामी जी के अनुसार कर्मयोग वस्तुतः निःस्वार्थपरता और सत्कर्म द्वारा मुक्ति लाभ करने की एक विशिष्ट प्रणाली है। विवेकानन्द कहते हैं कि बिना किसी निजी स्वार्थ के लोकोपकार के लिए अपना कर्तव्य सर्वश्रेष्ठ तरीक़े से करना ही कर्म योग है। कर्म योग के आदर्श को प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं, "आदर्श पुरुष तो वे हैं, जो परम शान्ति एवं निस्तब्धता के बीच भी तीव्र कर्म का, तथा प्रबल कर्मशीलता के बीच भी मरुस्थल की शान्ति एवं निस्तब्धता का अनुभव करते हैं। उन्होंने संयम का रहस्य जान लिया है-अपने ऊपर विजय प्राप्त कर चुके हैं। किसी बड़े शहर की भरी हुई सड़कों के बीच से जाने पर भी उनका मन उसी प्रकार शान्त रहता है, मानो वे किसी नि:शब्द गुफा में हों, और फिर भी उनका मन सारे समय कर्म में तीव्र रूप से लगा रहता है। यही कर्मयोग का आदर्श है, और यदि तुमने यह प्राप्त कर लिया है, तो तुम्हें वास्तव में कर्म का रहस्य ज्ञात हो गया।

गीता में वर्णित अनासक्ति का सिद्धान्त कर्मयोग में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। इसे समझाते हुए स्वामी जी कहते हैं, "अनासक्त होओ; कार्य होते रहने दो-मस्तिष्क के केन्द्र अपना अपना कार्य करते रहें-निरन्तर कार्य करते रहें, परन्तु एक लहर को भी अपने मन पर प्रभाव मत डालने दो। संसार में इस प्रकार कर्म करो, मानो तुम एक विदेशी पथिक हो, दो दिन के लिए यहाँ आये हो। कर्म तो निरन्तर करते रहो, परन्तु अपने को बन्धन में मत डालो; बन्धन बड़ा भयानक है। संसार हमारी निवासभूमि नहीं है; यह तो उन सोपानों में से एक है, जिनमें से होकर हम जा रहे हैं।

निष्कर्ष

कर्म योग का वास्तविक तात्पर्य समझाते हुए स्वामी विवेकानंद कहते हैं, "अब तुमने देखा, कर्मयोग का अर्थ क्या है। उसका अर्थ है मौत के मुंह में भी बिना तर्क-वितर्क के सब की सहायता करना। भले ही तुम लाखों बार ठगे जाओ, पर मुँह से एक बात तक न निकालो; और

तुम जो कुछ भले कार्य कर रहे हो, उनके सम्बन्ध में सोचो तक नहीं। निर्धन के प्रति किये गये उपकार पर गर्व मत करो और न उससे कृतज्ञता की ही आशा रखो; बल्कि उलटे तुम्हीं उसके कृतज्ञ होओ-यह सोचकर कि उसने तुम्हें दान देने का एक अवसर दिया है।